Parichaya
(UGC Care Listed Journal)
ISSN No: 2321-936X
Volume-36, No-1, 2021 (Jan-March)

स्त्री आत्मकथाओं में अभिव्यक्त समाज और सामाजिक संघर्ष

डॉ0 रवीन्द्र कुमार सिंह

शोध–निर्देशक, सहायक आचार्य / विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर (उ0प्र0)

बृजेश कुमार यादव

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश –

विवेच्य आत्मकथाओं के आधार पर नारी का सामाजिक जीवन देखने के उपरांत यही महसूस होता है कि नारी का सामाजिक जीवन यहाँ पर असुरक्षित होता है। समाज के भय के कारण ही नारी पति के सभी अन्याय–अत्याचार सहती नजर आती है। देखा जाए तो नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण ही अलग दिखाई देता है। नारी होते हुए भी पति के अन्यायों को सहती नजर आती है। विवाह जैसी व्यवस्था नारी को सुरक्षित रखती है। नौकरी करने वाली नारियों पर यहाँ पर अनेक लांछन लगाए जाते हैं। यहाँ पर चरित्रहीनता की समस्याएँ निर्माण होती दिखाई देती हैं। इसके लिए जिम्मेदार केवल पुरुष प्रधान समाज ही दृष्टिगोचर होता है।

एकाध नारी पति से छुटकारा पाने के लिए जब तलाक का सहारा लेती है तो समाज पति के दोषों को नहीं देखता। वह तो नारी को ही दोषी बनाता दिखाई देता है। अतः नारी का सामाजिक जीवन डाँवाडोल दिखाई देता है। उसे समाज के लोग हीन दृष्टि से देखते हैं। अतः नारी के लिए सामाजिक व्यवस्था अब भी ठीक नहीं है।

मुख्य शब्द– सामाजिक जीवन, सामाजिक व्यवस्था, दृष्टिकोण, नारी, विवाह, तलाक

आत्मकथा भले ही किसी एक की मिलती हो लेकिन व्यक्तिगत जीवन के माध्यम से उसमें पूरे समाज का परिवेश ही प्रस्तुत मिलता है। डॉ. अर्जुन चव्हाण का कहना सही है कि 'आत्मकथा की आधार भूमि है व्यष्टिगत जीवनानुभूति किंतु उसका लक्ष्य है 'समष्टिगत अभिव्यक्ति' और उसकी उन्नति फलस्वरूप आत्मकथा को अपने आप में साहित्य की एक विशिष्ट विधा मानना होगा।''[1] आत्मकथा के संदर्भ में मैनेजर पांडेय का कथन है– ''प्रत्येक आत्मकथा लेखन के सामने सामाजिक मुखौटा और व्यक्तिगत ईमानदारी का द्वंद होता है। यह बात कहने और सुनने में अच्छी लगती है कि व्यक्तिगत चेहरे को सार्वजनिक चौराहों, पर लाना महत्वपूर्ण हैं, लेकिन आत्मकथा लिखते हुए ऐसा करना आसान नहीं होता। मुखौटे से अस्मिता का द्वंद आत्मकथा लेखन में बार–बार प्रकट होता है। और लेखन को उस द्वंद का सामना भी करना पड़ता है।''[2] विवेच्य आत्मकथाओं में जो समाज चित्रित किया हुआ मिलता है। उसमें विविधता परिलक्षित होती है। स्वातंत्र्यपूर्ण कालीन और स्वातंत्र्योत्तर कालीन भारतीय समाज का चित्रण मैत्रेयी पुष्पा की कस्तूरी कुंडल बसै' तथा प्रकाशवती पाल की 'लाहौर से लखनऊ तक' में मिलता है। इनमें एक ओर ग्रामीण समाज तथा ओर शहरी समाज नजर आता है। ग्रामीण समाज का चित्रण मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुंडल बसै में दिखाई देता है तथा शहरी समाज का चित्रण अजीत कौर की कूड़ा–कबाड़ा और 'खानाबदोश' में दिखाई देता है। इनमें एक ओर शिक्षित समाज है पद्मा सचदेव की 'बूँद बावड़ी' कुसुम अंसल की 'जो कहा नहीं गया', कौसल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' और मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुंडल बसै' आदि आत्मकथाओं की अनेक नारियाँ शिक्षित हैं। किंतु उनमें अशिक्षित समाज का चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में है। 'कस्तूरी कुंडल बसै' आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा की माँ पढ़ना–लिखना चाहती थी पर घरवाले उसे पढ़ने की इजाजत नहीं देते। उस समय नारियों को पढ़ाया नहीं जाता था। घरवाले उनकी शादी कर देते थे। 'आलो आँधारि' की बेबी को पढ़ने की चाहत होते हुए भी शादी जैसे बंधन में बँधना पड़ा था।

विवेच्य आत्मकथाओं में जो समाज चित्रित किया हुआ मिलता है उसमें कहीं पर दलित समाज भी है तो कहीं पर सवर्ण दलित समाज का चित्रण कौसल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' में मिलता है। इस

Copyright © 2021Authors

ISSN No: 2321-936X
Volume-36, No-1, 2021 (Jan-March)

आत्मकथा को देखने पर यही महसूस होता है कि दलितों के जीवन में पीड़ा, घुटन और अपमान के सिवा कुछ नजर नहीं आता। दलित समाज में उस वक्त इनी गिनी लड़कियाँ ही पढ़ती थीं। वस्तुतः सम्पूर्ण समाज में ही बहुत कम लड़कियाँ पढ़ी–लिखी मिलती थीं।

समाज में कई रूढ़ि–परंपराएँ नजर आती हैं, जैसे– लड़की की शादी जल्दी से जल्दी करा देने की परंपरा है। लेकिन लड़की की मर्जी यहाँ पर देखी नहीं जाती। पुरखों से आयी रूढ़ि–परंपरा को यह समाज दोहराता नजर आता है। वह अपनी मर्जी लड़की पर लाद देता है। लड़की अगर पढ़ना भी चाहती है तो यह समाज उसे पढ़ने नहीं देता, बस उसकी शादी जरूर कर देता है।

कस्तूरी कुंडल बसै की मैत्रेयी पुष्पा की माँ कस्तूरी शादी करना नहीं चाहती थी। वह पढ़–लिखकर अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती थी। इस पर कस्तूरी की माँ का कहना है "नहीं बेटा, मैं तो यह पूछने आयी थी कि सारी उमर कुँआरी रहेगी, अकेली। तुझे डर नहीं लगता।"[3] बेटी कस्तूरी इस पर कहती है– "डर! डर ही तो लगता है चाची सच्ची, ब्याह से बड़ा डर लगता है।"[4] इस पर माँ का कहना कि "सो क्यों?"[5] कस्तूरी कहती है मुझमें सती होने की हिम्मत नहीं है, मुझे मरने से डर लगता है।"[6] अतः स्पष्ट है कि उस वक्त सती हो जाने की परंपरा थी जिसके कारण कस्तूरी शादी नहीं करना चाहती है। क्योंकि उसे लगता है अगर मेरा पति मर जाए तो मुझे भी सती होना पड़ेगा। यहाँ के समाज में किसी नारी का पति मर जाने के बाद वह सती नहीं हो जाती तो उसे समाज के लोग जीने नहीं देते थे। उसका जीना मुश्किल कर देते थे।

रूढ़ि परंपरा को भी मानती है। प्रायः रस्मों के त्यागने का साहस सभी नारियों में नहीं मिलता। परिवार में व्रत, उपवास तथा पूजा–पाठ की रूढ़ि परंपराएँ भी हैं जो नारियों को विरासत में प्राप्त हुई हैं, किंतु इसे नारियों को ही ढोना पड़ता है। फिर चाहे वह इच्छा से या अनिच्छा से मैत्रेयी पुष्पा का यह कहना सही है कि, "स्त्री गाँव में हो या शहर में, अपनी सामर्थ्य के हिसाब से पुरुषों की सेवा में लगी रहती है, उनके लिए व्रत–उपवास रखती है, सम्मान में सिर झुकाकर उम्र काटती है, फिर भी....? मेरा चोला भी 'औरत' बनकर कितना बदल गया है।"[7]

'बूँद बावड़ी' की पद्मा सचदेव के पति दीप हर वक्त अपनी पत्नी को बातें सुनाते, ताने देते थे। जब पति दीप साहब के आरोपों का अंत न होता तो पद्मा को राह न सूझती थी। वह समझ नहीं पाती क्या करे और क्या नहीं? बाद में वह शिवजी के मंदिर जाकर भगवान से अपने लिए बल माँगती। पद्मा सचदेव शिवरात्री का उपवास भी करती थी। अतः स्पष्ट है कि पद्मा सचदेव भी रीति–रिवाज को मानने वाली नारी थी। 'कूड़ा–कबाड़ा की अजीत कौर की बेटी कँडी की अंतिम रात थी। उस वक्त अजीत कौर ने सुखमनी साहिब के गुटके पर सिर झुकाकर हथियार डाल दिए और अपने परवरदिगार से कहा– 'जो उसके लिए अच्छा है, वह तू ही जानता है, मेरे सतगुरु, मेरे परवर दिगार! मैं नहीं जानती। सिर्फ इतना जानती हूँ कि न तो इस समय मुझसे उसकी तकलीफ देखी जाती है, न ही मैं उसकी वह तकलीफ सहन कर पाऊँगी जब वह जीवित होकर भी जीना नहीं चाहेगी। मेरे सतगुरु, मेरे ईश्वर उसका हाथ थाम लो। जिस राह पर उसके लिए तकलीफों से मुक्ति है, उसे उसी राह पर ले जाओ।"[8] अतः कह सकते हैं कि ज्यादा तकलीफ होती है तो नारी ईश्वर के सामने ही अपनी व्यथा कहती है, जैसे– 'कूड़ा–कबाड़ा' की अजीत कौर ईश्वर से अपनी बेटी के लिए दुवा माँग रही है।

'जो कहा नहीं गया की कुसुम असल की सारी सहेलिय थी इसीलिए कुसुम उनके साथ रोजे रखती थी ईद के दिनों में और उनके घर परिवार की बातें रुचि लेकर सुना करती थी कुसुम अंसल की दिनचर्या सुबह से ही आरंभ हो जाती थी उनके यहाँ रीति–रिवाज भी लिए अनिवार्य थे। सभी दादा जी के अनुशासन में ही पलते थे। क्योंकि दादा जी के कमरे से उनका स्वर सुबह–सुबह सबको सुनाई देता था। कुसुम की भी अपने दादा जी के साथ भजन गीत गाने पड़ते थे। अतः स्पष्ट है कि कुसुम अंसल के पैतृक परिवार में पूजा–पाठ करना नारियों के ही जिम्मे रहता है।

विवेच्य आत्मकथाओं में प्रस्तुत नारी का सामाजिक जीवन देखने यही लगता है कि जिन रूढ़ि–परंपराओं को हमारा समाज से ढोता आया है, उन्हें नारी को ही ढोना पड़ रहा है। नारी की शादी जल्दी कर दी जाती है।

Copyright © 2021Authors

CamScanner

ISSN No: 2321-936X
Volume-36, No-1, 2021 (Jan-March)

हमारा समाज कितना भी प्रगत क्यों न हुआ हो लेकिन लड़की के प्रति उसकी मानसिकता वही पुरानी ही नजर आती है तसलीमा नसरीन का न सही है कि "हमारे समाज में लड़कियों को इतना तुच्छ बनाकर रखा गया है कि अपने ही परिवार में उन्हें अभिनय करना पड़ता है। एक सुरक्षित आश्रय के लिए परिवार नामक मंच पर हर पल उसके अभिनय का इम्तहान चलता रहता है। परिणाम थोड़ा भी इधर–उधर होने पर लड़की का सब कुछ खत्म हो जाता है।"[9] विवेच्य आत्मकथाओं में लड़कियों का स्थान देखने के उपरांत यही लगता है कि आज भी समाज में लड़की का स्थान निम्न तथा गौण है। लड़कियों को बोझ की तरह ही पाल–पोस कर बड़ा किया जाता है। उसे बचपन से ही सिखाया जाता है कि लड़कियों को ऊँची आवाज में बात नहीं करनी चाहिए, जोर–जोर से हँसना नहीं चाहिए। आज भी समाज में कई माता–पिता अपनी लड़कियों को मुसीबत समझते हैं। उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। समाज में लड़की को जन्म लेने से पहले मार दिया जाता है। अक्सर माता–पिता लड़की लड़के में भेद करते नजर आते हैं। लड़कियों को पराई अमानत समझ कर पालते हैं। 'कूड़ा–कबाड़ा की अजीत कौर का कहना है "लड़की जो विवाह के बाद पति के घर की और ससुराल की धरोहर यानी जायदाद होती है। लड़की जिसे उसका पिता दान स्वरूप एक अजनबी पुरुष के हाथों में सौंप देता है कि ले जा आज से यह गाय तेरी है। इसका दूध निकालो, बछड़े पैदा करवाओ, मारो–पीटो, इसकी चाहे चमड़ी उधेड़ दो जा ले जा, पाल पोसकर तुझे दान में दी अपनी बेटी हमने आज से इसके लिए यह घर पराया है।"[10] समाज में लड़की के स्थान को स्पष्ट करने के लिए इससे अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है? समाज ने पढ़ी–लिखी लड़कियों को दुय्यम स्थान दिया है। कानून ने लड़कियों को समानाधिकार तो दिया है पर उस पर अमल नहीं किया जाता है। आज भी समाज में कुछ लड़कियों को प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है। उनका अपमान किया जाता है। कस्तूरी कुंडल बसै' की मैत्रेयी पुष्पा की माँ कस्तूरी का कहना सही लगता है– "देखो हम अपनी तकदीर बदल तो नहीं पाते, सँवार तो सकते हैं। ताजिंदगी पिछली यादों और दुर्भाग्यों को रोते–पीटते रहे तो आगे क्या बनेगा?"[11] हमारे समाज में बचपन में लड़की को माता–पिता ही सँभालते हैं। शादी के बाद पति उसे सँभालता है और बुढ़ापे में बेटे के सहारे उसे अपना जीवन बिताना पड़ता है। यही रीति सदियों से चली आयी हैं। शायद आगे भी चलती रहेगी। हाँ, इसमें बदलाव आ रहा है। कुछ लड़कियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त करती हैं और कहीं पर नौकरी करती हैं, लेकिन यहाँ पर सबसे ज्यादा लड़कियों को ही प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है। उनका शोषण किया जाता है। 'कस्तूरी कुंडल बसै' आत्मकथा में अपनी पढ़ाई करने वाली लड़की पर प्रिंसिपल द्वारा बलात्कार का प्रयास किया जाता है। उसे एक्स्ट्रा क्लास के बहाने से कॉलेज में बुलाकर उसका यौन शोषण करने की हरकत प्रिंसिपल द्वारा की जाती है। लेकिन मैत्रेयी जैसी लड़की अपना बचाव खुद करती है। पर यहाँ पर पुरुष की मानसिकता का पता चलता है कि वह लड़की को एक भोग की वस्तु के रूप में ही देखता नजर आता है। अब भी पुरुष स्वयं को नारी से सुपीरियर मानते हैं। जब लड़कियाँ स्वतंत्रता चाहती हैं, काम करना चाहती हैं, आगे बढ़ती हैं तो पुरुषी अहं इसे स्वीकार कर पाने में शायद खुद को असमर्थ पाता है। इस संदर्भ में ओमप्रकाश जी का कथन सही है – नारी के शोषण के विरुद्ध आवाज स्वयं नारी को ही उठानी होगी। यह भी जान लीजिए कि बड़े घरों की सजी–धजी फैशन के तौर पर और निज प्रचार हेतु नारी उत्थान की बातें करनेवालियों के लिए न कुछ हुआ है और ना ही कुछ होनेवाला है। भला जिनके पैर न फूटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई। साधारण स्त्री का मामला, मुद्दा साधारण स्त्री को ही उठाना होगा आपको, हम सबको, आज ही, अभी। पहले ही बहुत देर हो चुकी है।"[12] अतः हम कह सकते हैं कि जब तक नारी जागृत नहीं होगी तब तक कुछ नहीं बदलेगा।

विवेच्य आत्मकथाओं में प्रस्तुत प्रायः प्रत्येक लड़की जुल्म सहती नजर आती है। वह उत्पीड़ित दिखाई देती है। समाज में लड़कियों की आजादी का हनन भी परिलक्षित होता है। 'कस्तूरी कुंडल बसै' की मैत्रेयी पुष्पा अपनी माँ से कहती है – 'इसलिए कि मन में आता है अपनी सखियों को वीरांगनाओं के रूप में आवाज दूँ, पर वे बलि ही बलि हो जाती है। माताजी आज हमारे कॉलेज में शोक दिवस था, छुट्टी जल्दी हो गई, क्योंकि हमारी सखी निशि खरे कीटनाशक दवा पीकर मर गई। अपराध था, पिता ने मोटे पेटवाला वर खोजा था, जिसकी पहली पत्नी मर चुकी थी। मामला मुफ्त में फिट हो रहा था। निशि ने सारा खेल बिगाड़ दिया। समझाने–बहलाने से नहीं मानी। डाँटा, फटकारा, मारा–पीटा। आखिर को तय किया गया, उसे बेहोश कर के यहाँ से बाहर ले जाया जाए। माताजी, देश आजाद हो गया, हम जैसी लड़कियों पर हुकूमत कौन कर रहा है? अँगरेज कब चले गए, हमारे घरों में हत्यारा कहाँ छिपा है? निशि अभी पढ़ना चाहती थी। कई बार मुझसे कहा– पढ़कर नौकरी करेगी ताकि अपने पाँवों

Copyright © 2021Authors

ISSN No: 2321-936X
Volume-36, No-1, 2021 (Jan-March)

पर खड़ी हो जाए। शादी करने से दूसरों का मुँह जोहते रहते हैं। शादी करो तो अपने मन के लड़के से करो। मन के लड़के से शादी... पिता इसी पर खफा हो गए। पीछे तीन बहनें कुँआरी हैं, पिता की चिंता थी। खानदान की नाक काटेगी, यही दुख था। अब वह खानदान के मुँह पर अपनी चिता की राख मल गई।"[13] इस पर माँ का यह कहना कि 'लाली यही दुख है। दाग फिर भी लगेगा। बाकी तीन बहनों में उसका कोई रेशा न होगा, यह कौन मानेगा? पिता की गलती क्या, सारे समाज के पिता–दादा कठघरे में हैं, कोई माने या न माने।"[14]

निष्कर्ष –

अन्त में हम निष्कर्षतः कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति में परिवार को ही सबसे अहम् स्थान है। इसीलिए उसका अनुसरण करते हुए और कई बार चाहते हुए भी लड़की अपनी प्रतिभा तथा योग्यता का लाभ नहीं उठा पाती। आज भी लड़कियों को समाज एवं परिवार द्वारा कुछ सीमाएँ, प्रतिबंध, शर्तें तथा नियम आदि तय किए गए मिलते हैं। अगर वह विरोध कर अपनी शक्ति और प्रतिभा का प्रदर्शन करे तो यहाँ पर परिवार बिखरता है और न करे तो मन मारकर कुंठित होती रहती है।

विवेच्य आत्मकथाओं में प्रस्तुत समाज में लड़की का स्थान देखने पर यही महसूस होता है कि आज भी लड़कियों का स्थान निम्न ही नजर आता है। आज भी कुछ माता–पिता लड़कियों को बोझ मानते हैं। उसे पराई अमानत समझकर पालते हैं। लड़कियों पर कई पाबंदियाँ लगाते हैं। समाज द्वारा लड़की का शोषण होता है। इससे यही कहना होगा कि समाज में लड़की का स्थान दोयम ही है।

संदर्भ

1. दादा साहब मोरे (हिन्दी अनुवाद), डॉ0 अर्जुन चव्हाण, डेराडंगर, पृ०–5.
2. सं0 राजेंद्र यादव, 'हंस' कथा मासिक, पृ०– 31 जुलाई, 2004, मैनेजर पांडेय जी का लेख, "सार्वजनिक चौराहों पर व्यक्तिगत चेहरे से उद्धृत।
3. मैत्रयी पुष्पा 'कस्तुरी कुण्डल बसै' पृ०–99.
4. मैत्रयी पुष्पा 'कस्तुरी कुण्डल बसै' पृ०–10.
5. मैत्रयी पुष्पा 'कस्तुरी कुण्डल बसै' पृ०–10.
6. मैत्रयी पुष्पा 'कस्तुरी कुण्डल बसै' पृ०–10.
7. संजयबत राय, सहारा समय, पृ०–19.
8. अजीत कौर, कूड़ा–कबाड़ा, पृ०–175.
9. सं0 तसलीमा नसरीन, औरत के हक में, पृ०–30.
10. अजीत कौर, कूड़ा–कबाड़ा, पृ०–2.
11. मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुंडल बसै, पृ०–42.
12. सं0 डॉ0 केशव प्रथमवीर 'समग्र दृष्टि', दिसम्बर 2005, ओमप्रकाश बजाज जी का लेख 'घर की मुर्गी नहीं है गृहणी से उद्धृत, पृ०–60.
13. मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुंडल बसै, पृ०–188.
14. वही, पृ०–188.

Copyright © 2021Authors

CamScanner